डॉक्टर क्या लिखें: क्रोसिन या पैरासिटैमॉल?

चिरंतन चैटर्जी, केनसुके कूबो और विश्वनाथ पिंगली

हाल ही में एक अंग्रेज़ी अखबार में छपी एक खबर के अनुसार भारत सरकार ऐसा कानून बनाने पर विचार कर रही है, जिसके तहत डॉक्टरों को अपने मरीज़ को दवा प्रिस्क्राइब करते समय दवाई का ब्रांड नाम लिखने की अनुमति नहीं होगी। वे केवल जेनेरिक नाम ही लिख सकेंगे। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय केंद्र सरकार के अस्पतालों और क्लीनिक्स में कार्यरत डॉक्टरों के लिए पहले ही यह अनिवार्य कर चुका है कि उन्हें प्रिस्क्रिप्शन में दवा के ब्रांड नाम के साथ-साथ उसका जेनेरिक नाम भी लिखना होगा। लिहाज़ा वर्तमान में परिपाटी यह है किसी डॉक्टर को पैरासिटैमॉल लिखनी है तो वह दवा-पर्ची में अपनी पसंद के ब्रांड नाम जैसे क्रोसिन, डोलो इत्यादि के साथ-साथ पैरासिटैमॉल का नाम उसकी स्ट्रेंथ सहित लिखेगा। अगर नया कानून बन जाता है तो सभी डॉक्टर, यहां तक कि राज्यों के अस्पतालों तथा निजी अस्पतालों व क्लीनिक्स के डॉक्टर भी केवल 'पैरासिटैमॉल' ही लिख सकेंगे, किसी ब्रांड का नाम नहीं।

सवाल यह है कि आखिर यह बदलाव किस तरह से अच्छा है और इसमें ऐसी कौन-सी बातें हैं, जिनका नकारात्मक असर पड़ेगा। यह सवाल केवल भारत के संदर्भ में ही नहीं, बल्कि उन अन्य देशों के लिए भी प्रासंगिक है, जहां जेनेरिक दवाएं भी ब्रांड नाम से बेची जाती हैं (जिन्हें ब्रांडेड जेनेरिक्स कहते हैं)। चीन में भी डॉक्टर्स जेनेरिक नाम की बजाय ब्रांड नाम से ही दवाएं लिखते हैं। *दी न्यूयॉर्क टाइम्स* में छपे एक आलेख के अनुसार इस परंपरा के चलते ब्रांडेड दवाइयां तब भी महत्वपूर्ण बनी रहती हैं जब उनकी पेटेंट अवधि समाप्त हो जाती है और जेनेरिक दवाइयां प्रतिस्पर्धा में उतर आती हैं। इसलिए सभी उभरती हुई अर्थ व्यवस्थाओं में इस तरह के कानूनों पर बहस प्रासंगिक है, क्योंकि वे दवाइयों की कीमतों पर अंकुश रखने और उनके उत्पादन की गुणवत्ता जैसे अन्य मुद्दों के बीच संतुलन बनाना चाहती हैं।

हम इस तरह के कानून के अच्छे और बुरे पहलुओं के बारे में चर्चा करें, उससे पहले इंटरमॉलीक्यूलर और इंट्रामॉलीक्यूलर (विभिन्न अणुओं के बीच और एक ही अणु के अलग-अलग नामों के बीच) प्रतिस्पर्धा के अंतर को समझना ज़रूरी है। दवा उद्योग के सम्बंध में यह काफी अहम पहलू है। जब किसी नए अणु, भले ही उसे पेटेंट प्राप्त हो या न हो, का पदार्पण होता है तो डॉक्टरों का ध्यान खींचने के लिए उसे पहले से ही मौजूद उसी तरह के असर वाले अन्य अणुओं के साथ प्रतिस्पर्धा करनी होती है। इसे इंटरमॉलीक्यूलर (अंतर आणविक) स्पर्धा कहा जाता है।

समय बीतने के साथ यानी पेटेंट खत्म होने के बाद बाज़ार में उसी अणु का उत्पादन करने वाली अन्य कंपनियां भी आ जाती हैं। इस तरह एक ही अणु का उत्पादन करने वाली दवा कंपनियों के बीच प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाती है। इसे अंतराआणविक (इंट्रामॉलीक्यूलर) प्रतिस्पर्धा कहा जाता है। उदाहरण के लिए मधुमेह की मुंह से ली जाने वाली दवाइयां (ओरल एंटीडायबेटिक्स) के बाज़ार में कई अणु हैं - जैसे मेटफार्मिन हाइड्रोक्लोराइड, ग्लिमपिराइड, पॉयोग्लिटेज़ॉन और सिटेग्लिप्टिन फॉस्फेट। ये सभी इंटरमॉलीक्यूलर प्रतिस्पर्धा में शामिल हैं। मेटफार्मिन हाइड्रोक्लोराइड के बाज़ार में डॉ. रेड्डीज़ और यूएसवी जैसी कई कंपनियां हैं जो विभिन्न ब्रांड नामों से यही दवा बनाती हैं। इस तरह ये कंपनियां इंट्रामॉलीक्यूलर प्रतिस्पर्धा पैदा करती हैं।

कानून का फायदा

हर साल भारत ही नहीं, दुनिया भर की दवा कंपनियां डॉक्टरों के बीच अपने उत्पादों का प्रचार करने (जिसे

डिटेलिंग कहते हैं) के लिए काफी पैसा खर्च करती हैं। जब कोई नई दवा लांच की जाती है तो पहले से ही मौजूद अणुओं की भीड़ में डॉक्टरों का ध्यान आकर्षित करने के लिए कुछ डिटेलिंग तो ज़रूरी होती है। ऐसा डॉक्टरों को नए अणु की क्षमता के बारे में बताकर किया जाता है। डिटेलिंग की भूमिका मुख्यतः 'सूचनात्मक' होती है, लेकिन भारत जैसे बाज़ार में डॉक्टर पर्चियों पर दवाइयों के ब्रांड नाम ही लिखते हैं, वहां लंबे अरसे से उपस्थित अणु के लिए भी डिटेलिंग अनिवार्य हो जाती है। कारण यह है कि एक ही अणु के विभिन्न ब्रांड नामों में आपस में ही कड़ी प्रतिस्पर्धा होती है। ऐसे में डिटेलिंग केवल सूचनात्मक कवायद से भी आगे मार्केटिंग कवायद में बदल जाती है, जिसमें डॉक्टरों को अपने ब्रांड का 'कायल करना' ही मुख्य उद्देश्य हो जाता है।

इससे इस तरह की स्थिति पैदा हो जाती है, जिसे अर्थशास्त्री अक्सर प्रिज़नर्स डाइलेमा कहते हैं। दवा कंपनियों की स्थिति ऐसी ही होती है। मान लेते हैं कि सभी कंपनियां अपने ब्रांड के प्रति डॉक्टरों को कायल करने की कवायद में जुट जाती हैं। जो दवा कंपनियां खुद के ब्रांड को प्रमोट करने के लिए 'डिटेलिंग' करती हैं, वे ऐसा न करने वाली कंपनियों की तुलना में बाज़ार के बड़े हिस्से पर कब्ज़ा जमाने में सफल होती हैं। चूंकि सभी कंपनियां अपने उत्पादों के प्रमोशन में लगी होती हैं तो नतीजा यह निकलता है कि किसी भी कंपनी के मार्केट शेअर में कोई वृद्धि नहीं होती। अगर कोई भी कंपनी 'डिटेलिंग कवायद' में शामिल न होती तो शायद सभी फायदे में रहतीं, क्योंकि तब मार्केटिंग पर होने वाला खर्च बच जाता।

दरअसल, इस खर्च का खामियाज़ा उपभोक्ताओं को भुगतना होता है। कंपनियां मार्केटिंग पर किए गए खर्च की भरपाई अपने उत्पादों के दाम बढ़ाकर करती हैं। इसके अलावा डिटेलिंग से इंट्रामॉलीक्यूलर प्रतिस्पर्धा कमज़ोर हो जाती है, जिसका परिणाम कीमतों में और वृद्धि के रूप में सामने आता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि विभिन्न ब्रांड्स के बीच चुनाव तो डॉक्टर करते हैं और संभव है कि डॉक्टर कीमतों के लिए उतने संवेदनशील न हों जितने कि मरीज़ होते हैं (और भारतीय संदर्भ में दाम तो मरीज़ को ही चुकाने होते हैं)। यह भी संभव है कि गहन डिटेलिंग की वजह से नए अणुओं के प्रवेश को रोककर इंटरमॉलीक्यूलर और इंट्रामॉलीक्यूलर दोनों तरह की प्रतिस्पर्धा कमज़ोर पड़ जाए। और यदि डॉक्टर के साथ ऐसा जुगाड़ जमा लिया जाए कि वह एक ब्रांड-विशेष ही लिखेगा, तो अन्य कंपनियों को ऐसे बाज़ार में प्रवेश करने का उत्साह नहीं रहेगा। ऐसा होने पर डिटेलिंग एक औज़ार न रहकर मुनाफाखोरी का साधन बन जाएगा।

अब वापस केंद्र सरकार की योजना पर आते हैं जिसमें केवल जेनेरिक दवाइयां ही लिखने की अनुमति होगी। अगर यह कानून लागू हो जाता है, तब भी नई दवाइयों की डिटेलिंग कवायद जारी रहेगी। हालांकि पुरानी दवाइयों की डिटेलिंग कम हो सकती है, क्योंकि तब एकाधिक स्रोतों से मिलने वाली दवाइयों की डिटेलिंग करने में कोई फायदा नज़र नहीं आएगा। नए कानून के तहत डॉक्टर दवा का केवल जेनेरिक नाम लिख सकेगा और यह ज़रूरी नहीं है कि मरीज़ उसी दवा कंपनी की दवा खरीदे। अगर भारत में दवाइयों के जेनेरिक नाम लिखना ही अनिवार्य बना दिया जाता है तो डिटेलिंग पर दवा कंपनियों का खर्च काफी कम हो जाएगा और इस तरह एकाधिक स्रोत से प्राप्य पुरानी दवाइयों की कीमतें भी नीचे आ जाएंगी।

दवाइयों की कीमतों में गिरावट का व्यापक असर होगा। अगर देश में एकाधिक स्रोत से प्राप्य सस्ती दवाइयां उपलब्ध होंगी तो यह संभव है कि डॉक्टर्स और मरीज़ नई और महंगी दवाइयों की बजाय इन्हें ही आज़माने लगें। अगर ऐसा हो जाए तो नई और पेटेंटेड दवाइयों की कीमतों में भी गिरावट आने की संभावना बढ़ जाएगी। संक्षेप में कहें तो जेनेरिक दवाइयां लिखने की अनिवार्यता का परिणाम दवाइयों के दामों में गिरावट के रूप में सामने आएगा जिससे देश में स्वास्थ्य सुरक्षा पर खर्च कम होगा।

अगर हम कुछ अपेक्षाकृत परिपक्व औषधि बाज़ारों पर नज़र दौड़ाएं तो पता चलता है कि वहां की नीतियां ऐसी हैं जो जेनेरिक दवाइयों को प्रोत्साहित करती हैं। डॉक्टर्स को तो जेनेरिक या ब्रांडेड दवा लिखने की छूट है, लेकिन वहां

दवा विक्रेता (फार्मेसिस्ट) इस मामले में अहम भूमिका निभाता है कि मरीज़ को कौन-सी दवा दी जाएगी। मसलन, अमरीका के अनेक राज्यों ने दवा दुकानदारों को इस बात की छूट दे रखी है कि वे डॉक्टर की अनुमति बगैर भी ब्रांडेड दवाई के बदले जेनेरिक दवा दे सकते हैं, बशर्ते जेनेरिक दवा जैविक रूप से समतुल्य हो। इस व्यवस्था का एक नतीजा यह सामने आया है कि आज 80 फीसदी प्रिस्क्रिप्शन जेनेरिक दवाइयों के ही होते हैं। कनाडा में भी ब्रांडेड दवाइयों के जेनेरिक विकल्प देने के सम्बंध में ऐसी ही नीति लागू है। वहां की कई बड़ी बीमा कंपनियां तो अब ब्रांडेड दवाइयों का भुगतान करने से इंकार करने लगी हैं, ताकि डॉक्टर्स जेनेरिक दवाइयां ही लिखने को प्रेरित हों। हालांकि ऑस्ट्रेलिया में जेनेरिक नाम वाली दवाइयों के सम्बंध में कोई स्पष्ट नीति तो नहीं है, लेकिन वहां ब्रांड विकल्प नीति ज़रूर है जिसके तहत दवा विक्रेताओं को ब्रांडेड दवा के विकल्प के तौर पर समतुल्य जेनेरिक दवा देने की अनुमति होती है। जर्मनी और जापान जैसे देशों ने भी जेनेरिक दवाइयों के नामकरण सम्बंधी नीति बनाई है, ताकि उन्हें अलग-अलग ब्रांड नामों से बेचना असंभव या काफी मुश्किल हो। इस तरह की नीतियों का नतीजा यह निकलता है कि जेनेरिक दवाइयों के निर्माता डॉक्टर्स के सामने अपनी दवाइयों की मार्केटिंग बहुत कम करते हैं। किसी दवा का विकास करने वाली कंपनियां भी पेटेंट समाप्त हो जाने के पश्चात अपनी दवा की डिटेलिंग करने से बचती हैं।

संभावित दुष्प्रभाव

यह नया कानून खासकर ज़रूरी दवाइयां अपेक्षाकृत सस्ती दरों पर मिलने के लिहाज़ से तो फायदेमंद नज़र आ रहा है मगर इस कानून को लागू करने से पहले ऐसे कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे हैं, जिन पर ध्यान देना ज़रूरी है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि जिस भी अणु को लेकर दवा बनाई जाए, सभी कंपनियां उसकी एक जैसी गुणवत्ता सुनिश्चित करें। इस सम्बंध में नियामक संस्थाएं कह चुकी हैं कि सभी दवा कंपनियों को अनिवार्य रूप से विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) द्वारा 2005 में निर्धारित 'गुड मैन्युफैक्चरिंग प्रैक्टिस' (जीएमपी - उत्पादन के अच्छे तौर-तरीकों) का पालन करना होगा, लेकिन यह साफ नहीं है कि इसका किस सीमा तक क्रियान्वयन किया जा रहा है या किया जाएगा। यदि गुणवत्ता और निर्माण लागत के बीच सीधा सम्बंध माना जाए तो इस बात की पूरी आशंका है कि जेनेरिक दवा लिखने की अनिवार्यता से बाज़ार में कम गुणवत्ता वाली दवाइयों की आवक बढ़ जाएगी। अच्छी गुणवत्ता वाली दवाइयों की कीमत पर सस्ती दवाइयां बाज़ार पर छा जाएंगी।

जेनेरिक दवा लिखने की अनिवार्यता से समस्या का एक नया रूप भी सामने आ सकता है। इससे दवा निर्माता कंपनियों का ध्यान डॉक्टर्स से हटकर दवा विक्रेताओं की ओर जा सकता है। दवा विक्रेताओं को उन उत्पादों को बेचने में ज़्यादा फायदा होता है जिनमें उन्हें अधिक मार्जिन मिलता है। ऐसे में उनके लिए न तो दवाइयों की कम कीमत मायने रखेगी और न ही उनकी गुणवत्ता। यदि गुणवत्ता के मापदंडों को कड़ाई से लागू नहीं किया गया तो इस बात की पूरी संभावना होगी कि दवा कंपनियां अपनी दवा की लागत को कम रखकर (यानी गुणवत्ता के साथ समझौता करके) दवा विक्रेताओं को अधिक से अधिक मार्जिन उपलब्ध करवाएंगी। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में खुदरा दवा विक्रेता कहीं अधिक एकजुट हैं। ऐसे में प्रलोभन (इन्सेंटिव) का यह भ्रष्ट खेल एक कड़वी सच्चाई बन सकता है, यानी उन दवाइयों को बढ़ावा देना, जिनकी निर्माता कंपनियां अधिक मार्जिन दें।

इस कानून को लागू करने से इस बात की भी संभावना है कि जेनेरिक दवा कंपनियों में अपनी दवाइयों को दूसरों से अलग दिखाने की होड़ बढ़ जाए। इससे औषधि मिश्रणों की बाढ़ आ जाएगी। यानी पहले से ही दवा के रूप में स्वीकृत एक या एक से अधिक अणुओं के मिश्रण के रूप में नई दवा प्रस्तुत करने के मामले बढ़ जाएंगे। यह सही है कि कुछ मामलों में ऐसे मिश्रणों से स्वास्थ्य सम्बंधी बेहतर नतीजे मिलते हैं या मरीज़ों की जेब पर भी भार कम पड़ता है, लेकिन अक्सर कंपनियां इनका इस्तेमाल अपने उत्पाद को दूसरे उत्पादों से अलग दिखाने के लिए करती हैं।

कुछ डॉक्टरों से हुई चर्चा से यह बात भी सामने आई कि नए मिश्रणों में से कुछ के तो फायदे भी संदेह के घेरे में हैं। नए मिश्रणों की मंजूरी की पूरी प्रक्रिया ही साफ नहीं है और इसलिए इस तरह के मिश्रणों को लेकर सतर्कता की ज़रूरत होगी। इसका यही मतलब है कि अगर नए कानून के कारण दवा निर्माता अपनी दवाइयों को अलग दिखाने के लिए मिश्रणों का इस्तेमाल करते हैं तो इससे आम लोगों की सेहत के साथ खिलवाड़ बढ़ जाएगा।

इस नए प्रस्तावित कानून में एक दिक्कत इंसुलिन जैसी बॉयोलॉजिकल दवाइयों को लेकर भी आएगी। इन बॉयोलॉजिकल दवाइयों के जेनेरिक संस्करण की मंज़ूरी प्रक्रिया क्या होगी, यह अब भी स्पष्ट नहीं है। ये दवाइयां वैज्ञानिक दृष्टि से काफी जटिल होती हैं और आणविक दवाइयों के विपरीत इनकी गुणवत्ता निर्माण प्रक्रिया के प्रति काफी संवेदनशील होती है। इनके मामले में जैविक समतुल्यता का निर्धारण भी आसान नहीं होता। ऐसे में इन दवाइयों के मामले में तो गुणवत्ता का मुद्दा बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है।

उपसंहार

जेनेरिक दवाएं ही प्रिस्क्राइब करने की अनिवार्यता सम्बंधी कानून ऊपर से तो बहुत अच्छा नज़र आता है, लेकिन इससे दवाइयों की गुणवत्ता व मिश्रित दवाइयों के रूप में नई समस्याएं खड़ी हो सकती हैं। इससे इस कानून के कोई खास फायदे तो नहीं होंगे, उलटे लोगों के स्वास्थ्य पर नया खतरा मंडराने लगेगा। इसके मद्देनज़र इस प्रस्तावित कानून को लागू करने से पहले इन तीन शर्तों को पूरा करना ज़रूरी होगाः

1. यह सुनिश्चित करना कि सभी निर्माण इकाइयों में दवा की गुणवत्ता सम्बंधी उचित मानदंड लागू हों। शुरुआत विश्व स्वास्थ्य संगठन के जीएमपी सम्बंधी नियमों के क्रियान्वयन से करनी होगी।

2. मिश्रित दवाइयों और जटिल बॉयोलॉजिकल दवाइयों के जेनेरिक संस्करणों की मंज़ूरी के लिए एक बहुत ही स्पष्ट व कठोर नियामक व्यवस्था होनी चाहिए।

3. दवा विक्रेताओं को कितना मार्जिन लेने की अनुमति होगी, इस सम्बंध में भी स्पष्ट प्रावधान होना चाहिए, ताकि किसी प्रकार का कोई भ्रष्टाचार न हो सके। राष्ट्रीय दवा मूल्य निर्धारण प्राधिकरण ने प्राइस रेगुलेटेड दवाइयों के लिए अधिकतम मार्जिन तय कर रखा है। इस व्यवस्था को अन्य दवाइयों पर भी लागू करना चाहिए। ***(स्रोत फीचर्स)***

इस अंक के चित्र निम्नलिखित स्थानों से लिए गए हैं -

page 02 - http://www.trbimg.com/img-52528e89/turbine/la-fg-wn-2-americans-german-win-nobel-medicine-001/600

page 04 - http://static.guim.co.uk/sys-images/Guardian/Pix/pictures/2013/10/8/1381231797048/c446c964-fff5-4059-bcfa-37fbfbb7f025-460x276.jpeg

page 11 - http://www.zipheal.com/wp-content/uploads/2013/01/healthy_pregnancy_diet.png

page 18 - http://milesdemillones.files.wordpress.com/2012/01/paracetamol-pills.jpg

page 28 - http://asparkofmoonlight.files.wordpress.com/2013/06/stars.jpg

page 30 - http://www.impactlab.net/wp-content/uploads/2008/10/black-hole.jpg

page 32 - http://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/9/9c/Telescope-KeplerSpacecraft-20130103-717260main_pia11824-full.jpg

page 36 - http://www.cdfa.ca.gov/kids/images/media.jpg

page 37- http://www.nature.com/ncomms/2013/131022/ncomms3614/fig_tab/ncomms3614_F2.html

last cover - http://globerove.com/wp-content/uploads/2010/03/Mount-Vesuvius-Italy.jpg
http://www.vesuvioinrete.it/galleria/osservatorio3.JPG